International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 01-03

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 01-03
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-05-2021
Accepted: 05-06-2021

डॉ. रेखा अरोडा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मिराण्डा हाउस, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रेखा अरोडा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मिराण्डा हाउस, दिल्ली, भारत

अर्थविषयक द्वादश मत

डॉ. रेखा अरोडा

प्रस्तावना

शब्द का प्रयोग स्वनिष्ठ और अभिन्न अर्थ की प्रतीति के लिए किया जाता है। वह अर्थ क्या है? इसके स्वरूप के विषय में आचार्यों में मतभेद है। भर्तृहरि ने इस विषय पर विस्तृत विवेचन किया है। वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड में उन्होंने संभवतः प्राचीन काल से चले आ रहे अर्थविषयक विविध मतों का संकलन करके, उनका विश्लेषण किया है। पुण्यराज ने इनका द्वादशधा विभाजन किया है। ये मत अर्थवैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ परस्पर विरोधी हैं तो कुछ एक दूसरे के पूरक। इन मतों को कुछ उपमतों में विभाजित करके इनका अध्ययन निम्न रूप में किया जा सकता हैं

आकार पक्ष –

इस पक्ष के अन्तर्गत आकार को आधार मानकर अर्थ की व्याख्या की गई है। कुछ आचार्य अर्थ को निराकार मानते हैं तो कुछ साकार।

प्रथम मत के अनुसार सभी गवादि शब्दों का वाच्यार्थ अपूर्व, देवता, स्वर्ग आदि के समान आकारादि से रहित अर्थ सामान्य मात्र होता है।[1] शब्द केवल अर्थमात्र (सत्तामात्र) का बोध कराते हैं। उनमें आकारादि का परामर्श नहीं होता। अपूर्व, देवता, धर्म, अधर्म, स्वर्ग आदि इन ध्वनिसमूहों से अर्थ प्रतीति तो होती है परन्तु इनका आकार सार्वभौम दृष्टि से निश्चित नहीं है, इसी प्रकार प्रत्येक शब्द आकारहीन अर्थतत्व की प्रतीति करवाता है। गो, अश्व आदि के अर्थ में जो आकारादि की प्रतीति होती है, वह वास्तव में शब्द की वाच्य नहीं होती अपितु वह उस अर्थ से नान्तरीयक रूप से आकारादि के सम्बद्ध होने के कारण होती है।

प्रश्न उठता है कि गो, अश्व आदि शब्दों से आकार आदि की भी प्रतीति देखी गई है अतः अर्थ को निराकार न मानकर साकार क्यों नहीं मान लेते? भर्तृहरि ने उत्तर दिया है कि आकार का अवग्रह बार–बार उसी आकार से युक्त अर्थ में प्रयोग देखने के कारण होता है। वह शब्द का विषय न होकर किसी अन्य प्रयत्न के कारण होता है।[2] व्यवहार में हम 'गो' शब्द का प्रयोग सास्नादिमान् पशु के लिए देखते हैं और इसी प्रकार के प्रयोग को देखने का अभ्यास पड़ जाने के कारण 'गो' से आकृतियुक्त अर्थ समझते हैं। इसका कारण इन प्रयोगों को देखना ही है, वस्तुतः अर्थ विशिष्ट आकार से रहित अर्थमात्र ही होता है।

कुमारिल ने उपर्युक्त मत का अभिप्राय यह लिया है कि अर्थापत्ति के आधार पर शब्द की वाचक शक्ति नियतअर्थविषयक होती है[3] किन्तु कुमारिल ने इस मत का अभिप्राय अन्यथा रूप में लिया है। इस मत का अभिप्राय यह नहीं कि शब्दों का अन्य कोई अर्थ नहीं, इसका अर्थ केवल इतना है कि शब्द का अर्थ होता है, उसमें आकार आदि का ग्रहण नहीं होता।

कुछ आचार्यों के अनुसार अर्थ साकार है। भर्तृहरि इस मत का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कुछ भेद तदभिधायक शब्दों के द्वारा प्रकाशित होते हैं और कुछ अनुनिष्पादी होते हैं, वे सभी शब्द का अर्थ कहलाते हैं।[4] प्रस्तुत मत का स्पष्टीकरण करते हुए पुण्यराज कहते हैं कि कुछ जाति आदि भेद तो शब्द के वाच्य होते हैं और कुछ अर्थोत्पत्ति के बाद उत्पन्न होने के कारण अर्थ के प्रयोजक होते हैं। शब्द के द्वारा इन सभी का बोध होता है।[5]

इस मत को पूर्वपक्ष में स्थापित करके भर्तृहरि इस मत का खण्डन करते हैं। उनका कथन है कि जातिवाची शब्द जाति का ही बोध कराते हैं, व्यक्ति का आनुषंगिक रूप से बोध होता है क्योंकि जाति बिना व्यक्तियों के नहीं रह सकती। जातिवाची शब्द वस्तुतः इन भेदों का वाचक नहीं। वह केवल जाति का ही बोध कराते हैं।[6] यथा घट शब्द के उच्चारण से घट जाति या सभी घटों के सामान्य तत्व पृथुबुध्नोदराकार का ही बोध होता है, न कि घट के व्यक्तिरूपों के सभी संभावित आकारों का। पुण्यराज के अनुसार शब्द में यह शक्ति नहीं कि वह सभी विशेषताओं से युक्त अर्थ का बोध कराए।[7]

तृतीय मत के अनुसार समस्त आकार गौण या मुख्य रूप से शब्द के ही अर्थ हैं। भर्तृहरि के शब्दों में कुछ आचार्यों के मत में साध्य साधन विशिष्ट सब कुछ शब्द का अभिधेय अर्थ होता है।[8] जिस किसी के बिना शब्द के अर्थ का निर्वाह नहीं होता, वह सब साध्य साधनात्मक अर्थ शब्द का ही अभिधेय होता है।

कुछ आचार्यों के अनुसार विकल्प और समुच्चय से रहित समुदाय शब्द का अभिधेय है।[9] वन शब्द से धव, खदिर, पलाश आदि का समुदाय तथा ब्राह्मण शब्द से तप, विद्या, जाति आदि से युक्त समुदाय अभिधेय है। विकल्प और समुच्चय का प्रयोग साभिप्राय है। इसका कारण है कि यदि शब्द आकार समुदाय का समुच्चय रूप से बोध कराता है, ऐसा मानते हैं तो प्रत्येक शब्द में बहुवचन का प्रयोग उचित होगा, परन्तु एकवचन भी देखने को मिलता है और यदि शब्द से विकल्प से युक्त समुदाय का बोध माने तो कभी बहुवचन होगा और कभी एक ही आकार होने के कारण एकवचन का प्रयोग होगा। अतः कहा गया है कि शब्द का अर्थ विकल्प और समुच्चय से रहित समुदाय है।

भर्तृहरि का विकल्प और समुच्चय अस्पष्ट है परन्तु शान्तरक्षित के तत्वसंग्रह पर कमलशील की पञ्जिका में विकल्प और समुच्चय की व्याख्या इस प्रकार की गई है– ब्राह्मण शब्द वन के समान है। वन शब्द से धव है, खदिर है, पलाश है, इस रूप में अलग–अलग प्रतीति नहीं होती। वन धव भी है, खदिर भी है, पलाश भी है, इस रूप में समुच्चय रूप में भी प्रतीति नहीं होती, अपितु साकल्य रूप में एक प्रतीति होती है। इसी प्रकार ब्राह्मण शब्द का उच्चारण करने पर तप अथवा जाति का न तो अलग–अलग और न ही समुच्चय रूप में ज्ञान होता है, अपितु उनका ब्राह्मण से संबंधित एक समुदाय के रूप में बोध होता है।[10] इस प्रकार द्रव्य, गुण और जाति का समुदाय ही अर्थ है।

सत्य और असत्य स्वरूपात्मक पक्ष –

इस पक्ष के अन्तर्गत एक मत में अर्थ असत्य है और द्वितीय मत में सत्य है। पंचम मत के समर्थक आचार्यों के अनुसार शब्द का अर्थ असत्यसंसर्ग है।[11] शब्द से जाति, गुण तथा क्रियात्मक अर्थ का असत्यभूत संसर्ग ही वाच्य होता है। घटादि शब्दों से वस्तु और उसके धर्मों जैसे जाति, गुण उनमें रहने वाली क्रियाओं से संबंध का कथन होता है, परन्तु यह संबंध वस्तु के बिना नहीं रह सकता है, अतः संबंध असत्यभूत कहा जाता है। कैय्यट ने वेदान्त के तर्कशास्त्र के आधार पर इस भाव को स्पष्ट किया है कि ब्रह्मदर्शन होने पर गोत्वादि जाति भी असत्य ज्ञात होती है अतः जाति भी अनित्य है केवल ब्रह्म ही सत्य है।[12]

छठे मत के अनुसार असत्य उपाधि से विचित्रत सत्य ही शब्द का अर्थ है[13], अर्थ सत्य है परन्तु असत्य वस्तुओं से सम्बद्ध होने के कारण अर्थात् उनका बोध कराने के कारण वह असत्य प्रतीत होता है।

शब्दार्थ संबंधी उभयात्मक पक्ष –

कुछ मतों में अर्थ के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए शब्द का भी विवेचन किया गया हैं ऐसे मतों को हम शब्दार्थ संबंधी उभयात्मक पक्ष में रख सकते हैं।

जैसे सप्तम मत के अनुसार अभिजल्पत्व को प्राप्त हुआ शब्द ही अर्थ कहा जाना चाहिए अभिजल्प की व्याख्या करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि सोऽयम् (वही है) इस प्रकार तादात्म्य संबंध के कारण जब शब्द की पदार्थ से एकाकार प्रतीति होती है, तो अर्थ से एकाकार हुआ वह शब्द ही अभिजल्प कहलाता है।[14] पुण्यराज ने अभिजल्प का अभिप्राय अध्यास लिया है। उनका कथन है कि अध्यास के कारण शब्द से पदार्थ का स्वरूप आच्छादित हो जाता है और दोनों की एकाकार प्रतीति होती है।

कारिका से ऐसा प्रतीत होता है कि भर्तृहरि को अभिजल्प से आच्छादन अभिप्रेत नहीं है। वे सिर्फ दोनों की एकाकार प्रतीति का कथन करते हैं। परवर्ती काल में नागेश ने भी पुण्यराज का अनुसरण करते हुए एकाकार प्रतीति का अध्यास रूप माना है।[15]

अष्टम मत के अनुसार अर्थ असर्वशक्तिसंपन्न है। उनमें बोधित होने की निजी क्षमता नहीं है। शब्दों के द्वारा जिस रूप में अर्थ का बोध कराया जाता है, वह उसी रूप में गृहीत होता है। इसलिए अर्थ शब्द की शक्ति से ही प्रकाशित किया गया होता है।[16] अर्थ में स्वयं को प्रकाशित करने की शक्ति नहीं अतः अर्थ असर्वशक्तिसंपन्न है।

पूर्वोक्त मत के विपरीत इस मत के समर्थक आचार्यों के अनुसार अर्थ सर्वशक्तिसंपन्न है, क्योंकि अर्थों में बोधित होने की क्षमता होती है। शब्दों के द्वारा केवल उनकी नियत शक्ति का कथन होता है। अर्थ अपनी शक्ति के कारण कभी क्रियारूप में कहा जाता है और कभी द्रव्य रूप मे[17] इस प्रकार क्रिया और द्रव्य नियमित रूप से शब्दार्थ के रूप में परिकल्पित किए जाते हैं।

दशम मत का स्पष्टीकरण करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि जो अर्थ बुद्धि का विषय है, वह ही बाह्य पदार्थ के ज्ञान का कारण है अतः कुछ आचार्य बाह्य पदार्थ के रूप में ज्ञात उस बौद्ध अर्थ को ही शब्दार्थ कहते हैं।[18]

प्रस्तुत मत शब्दार्थ की बुद्धिगत या मानसिक संता की ओर संकेत करता है। दो वस्तुओं के बीच ज्ञापक और ज्ञाप्य संबंध की संभावना तभी हो सकती है, जबकि दोनों एक ही स्तर से संबंधित हों, शब्द चूंकि अर्थ का ज्ञापक है, वह बुद्धिगत है और उससे बुद्धिगत अर्थ का ही बोध होता है, अतः शब्द और अर्थ दोनों बौद्ध हैं, पर उनका बाह्यरूप भी देखने को मिलता है।

भर्तृहरि भी अर्थ की बुद्धिगत सत्ता को स्वीकार करते हैं परन्तु इस मत से उनकी भिन्नता यह है कि यह मत बाह्य अर्थ को भ्रमात्मक मानता है, जबकि भर्तृहरि बुद्धिगत अर्थ को मुख्य मानते हुए भी बाह्य अर्थ को वास्तविक मानते हैं और भ्रम को कहीं स्थान नहीं देते।

एक अन्य मत के अनुसार कुछ शब्दों से बोध्य अर्थ आकार विशेष संपन्न और बाह्य वस्तु की स्मृति का कारण होता है। इनसे अतिरिक्त (स्वर्गादि) शब्दों का अर्थ आकारविशेष से रहित संवित्मात्र होता है।[19]

जिन शब्दों के अर्थ का बाह्यजगत् में एक अनुसारी पदार्थ होता है, एवं उस पदार्थ का कोई आकार होता है, शब्द का श्रवण होने पर वह आकार भी मन में उपस्थित हो जाता है और शब्द के अर्थ में सम्मिलित हो जाता है। गो, घट, पट आदि शब्दों का इसी प्रकार आकार विशेष युक्त बाह्य अर्थ होता है जबकि अपूर्व, देवता, स्वर्ग आदि का आकारहीन बौद्ध अर्थ होता है। इन शब्दों के अर्थ का किसी रूप या आकार से संसर्ग नहीं हो सकता, क्योंकि बाह्य जगत् में ऐसी कोई वस्तु प्रत्यक्ष नहीं। अतः इन शब्दों से आकारहीन बौद्ध अर्थ की प्रतीति होती है।

उपर्युक्त मतों में शब्द और अर्थ दोनों के स्वरूप का वर्णन होने के कारण ये शब्दार्थ विषयक उपयात्मक पक्ष में रखे गए हैं।

अर्थ का अनिश्चित स्वरूप –

अन्तिम और बारहवें मत में अर्थ के अनिश्चित स्वरूप का वर्णन किया गया है। भर्तृहरि का कथन है कि इन्द्रिय विषय के प्रति संबद्ध होती हुई जिस रूप में उसका विविधाकारयुक्त प्रकाशन करती है, शब्द से उसी प्रकार अर्थ की अनेकधा प्रतीति होती है।[20]

अर्थ की अनिश्चितता के मूल को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि वक्ता अपनी बुद्धि के अनुरूप अर्थ में शब्द का प्रयोग करता है किन्तु श्रोता अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार उस शब्द का विभिन्न अर्थ समझते हैं।[21]

पुण्यराज ने उदाहरण दिया है कि सांख्य, जैन, बौद्ध आदि दार्शनिक संप्रदाय अपने–अपने ज्ञान के अनुसार अर्थ का ग्रहण करते हैं, यथा वैशेषिक मतावलम्बी घट का प्रयोग अंगों से व्यतिरिक्त संपूर्ण अवयवी के लिए करते हैं, किन्तु सांख्य दर्शन 'घट' से सत्व, रजस, और तमस् तीन गुणों के समूह को ग्रहण

करता है, जैन और बौद्ध इन्हें परमाणुओं का समूह मात्र मानते हैं। इस प्रकार वक्ता द्वारा 'घट' शब्द का प्रयोग एक अर्थ में किया गया परन्तु विभिन्न श्रोता अपने–अपने ज्ञान के अनुरूप उसे विभिन्न अर्थों में ग्रहण करते हैं।[22]

पुण्यराज ने केवल दार्शनिक संप्रदायों के ऊपर इसे घटित किया है, वास्तव में इन दर्शनों ने अर्थ का विवेचन ही नहीं किया।

अर्थसंबंधी उपर्युक्त बारह मतों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मत अर्थ की किसी न किसी विशेषता को प्रकाशित करता है। इनमें से कुछ मतों का भर्तृहरि ने खण्डन किया है और कुछ को उपयुक्त मान कर उनका समर्थन किया है।

संदर्भ

1. वाक्यपदीय, 2.119
   अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याय्यलक्षणम्।
   अपूर्वदेवतास्वर्गेः सममाहुर्गवादिषु।।
2. वा.प. 20.120 –
   प्रयोगदर्शनभ्यासादाकारावग्रहस्तु यः।
   न स शब्दस्यविषयः स हि यत्नान्तराश्रयः।।
3. मीमांसा सूत्र 1.3.9.28 – तन्त्रवार्तिक – प्रतिनियतार्थं विषया हि शब्दानां वाचकशक्तिरर्थापत्या गम्यते।
4. वा.प. 2.121 – केचिद् भेदाः प्रकाश्यन्ते शब्दैस्तदभिधयिभिः।
   अनुनिष्पादिनः कांश्चिच्छब्दार्थ इति मन्यते ।।
5. उपर्युक्त पर पुण्यराज
6. वा.प. 2.122– जातिप्रत्यायके शब्दे या व्यक्तिरनुषंगिणी।
   न तान् व्यक्तिगतान् भेदान् जातिशब्दोऽवलम्बते।।
7. वा.प. 2.122 पर पुण्यराज
8. वा.प. 2.125 – नियतास्तु प्रयोगा ये नियतं यच्च साधनम्।
   तेषां शब्दाभिधेयत्वमपरैरनुगम्यते।।
9. वा.प. 1.126 – समुदायोऽभिधेयः स्यादविकल्पसमुच्चयः।
10. तत्वसंग्रह, कारिका 444, कमलशील – वनमित्युक्ते धवो वा खदिरो वा पलाशो वेति न विकल्पेन प्रतीतिर्भवति नापि धवश्च खदिरश्च पलाशश्चेति समुदायेन अपितु सामान्येन प्रतीयन्ते धवादयः। तथा ब्राह्मण इत्युक्ते तपो वा जातिर्वा श्रुतं वा तपश्च जातिश्च श्रुतं चेति न प्रतिपत्तिर्भवति।
11. वा.प. 2.126 – असत्यो वापि संसर्गः शब्दार्थः कैश्चिदिष्यते।
12. महाभाष्यप्रदीप, पस्पशाह्निक – ब्रह्मदर्शने च गोत्वादि जातेरप्यसत्यत्वादनित्यत्वम्, 'आत्मैवेदं सर्वम्' इति श्रुतिवचनात्।
13. वा.प. 2.127 – असत्योपाधि यत्सत्यं तद्वाशब्दनिबन्धनम्।
14. वा.प. 2.126– सोऽयमित्यभिसंबन्धाद् रूपमेकीकृतं यद्।
15. शब्दस्यार्थेन तं शब्दमभिजल्पं प्रचक्षते।।
16. वै.सि. लघुमञ्जूषा – (संपादक – सभापति शर्मा – पृ. 25)
17. वा.प. 2.131 – अशक्तेः सर्वशक्तेर्वा शब्दैरेव प्रकल्पिता ।।
18. वा.प. 2.131 – एकस्यार्थस्य नियता क्रियादिपरिकल्पना।
19. वा.प. 2.132 – यो वार्थो बुद्धिविषयो बाह्यवस्तुनिबंधनः।
   स बाह्यवस्त्विति ज्ञातः शब्दार्थः कैश्चिदिष्यते।।
20. वा.प. 2.133 – आकारवन्तः संवेद्याः व्यक्तस्मृतिनिबन्धनाः।
   ये ते प्रत्यवभासन्त संविन्मात्रं ततोऽन्यथा।
21. वा.प. 2.134 – यथोन्द्रियं सन्निपतद्वैचित्र्येणोपदर्शकम्।
   तथैव शब्दादर्थस्य प्रतिपत्तिरनेकधा।
22. वा.प. 2.135 – वक्त्राऽन्यथैव प्रक्रान्तो भिन्नेषु प्रतिपत्तृषु।
   स्वप्रत्ययानुकारेण शब्दार्थः प्रविभज्यते।।
23. वा.प. 2.135 पर पुण्यराज